अङ्क-२४
जुलाई-दिसम्बर २०१४

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

वैदिकसंहिताओं में कालतत्त्व

रवि प्रभात

वेद भारतीय ज्ञान-परम्परा का प्राचीनतम स्रोत है। इसमें सभी सिद्धान्तों का किसी न किसी रूप में सङ्केत मिलता है। वैदिकसंहिताओं के सन्दर्भ में यदि कालतत्त्व को देखा जाय तो वहाँ इसके तात्त्विक एवं व्यावहारिक दो रूप मिलते हैं। इन दोनों में मूल भेद यह है कि प्रथम नित्य, अमूर्त, अविभाज्य, निरवयवी, अनन्त, अविनाशी तत्त्व है जबकि दूसरा अनित्य, मूर्त, विभाज्य, परिमित आदि है। तात्त्विक-काल जगत् का कारण माना जाता है, उससे जगत् की सृष्टि हुई है जबकि व्यावहारिक-काल समय का वाचक है, जो क्षण, लव, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, याम, अहोरात्र, पक्ष, मास, संवत्सर, युग आदि रूपों में अभिव्यक्त होता है। इसके साथ क्षिप्र, मन्द, पूर्वकाल, उत्तरकाल, भूत, वर्तमान, भविष्य आदि की चर्चा भी व्यावहारिक-काल के सन्दर्भ में की जाती है। सूर्य, चन्द्र, दिवा, रात्रि, कृत्रिम घड़ियाँ आदि अमूर्त-काल की मूर्त अभिव्यक्ति हैं। काल के तात्त्विक एवं व्यावहारिक दोनों रूपों का स्पष्ट सङ्केत मैत्रायणी-उपनिषद् में मिलता है, यहाँ ब्रह्म को दो प्रकार का बताया गया है । जो सूर्य से पहले है वह ब्रह्म का अकाल-रूप है तथा जो सूर्य के साथ उत्पन्न होता है वह सकल तथा सावयव है।[१] ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर्यसिद्धान्त' में द्विविध काल का स्पष्ट उल्लेख है। प्रथम काल लोकों का संहार करने वाला है तथा दूसरा काल गणना करने वाला है। पुनः गणनात्मक काल स्थूल एवं सूक्ष्म-भेद से मूर्त एवम् अमूर्त दो प्रकार का कहा गया है।[२]

ऋग्वेदसंहिता में कालबोधक अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु काल का शब्दशः प्रयोग मात्र एक बार ही दशममण्डल में दृष्टिगत होता है, जहाँ यह समय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ इन्द्र की स्तुति करते हुए कहा गया है कि क्रीडक द्यूतकाल में जिससे हारा होता है उसे ढूँढकर हरा देता है, वैसे ही इन्द्र अनिष्टकर्त्ताओं पर विजय प्राप्त करता है। जो देवभक्त देवपूजा में धन व्यय करने में कृपणता नहीं करता है, इन्द्र उसके लिये धन को नहीं रोकता और उसके लिये धन का सृजन करता है।[३] ऋग्वेद के

---

[१] द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्चाथ यः प्रागादित्यात्सोऽकालोऽकलोऽथ य आदित्याद्यः स कालः सकलः । (मैत्रायणी-उपनिषद् ६.१५)

[२] लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते ॥ (सूर्यसिद्धान्त १.१०)

[३] उत प्रहामति दीव्या जयाति कृतं यच्छवघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥ (ऋग्वेद : १०.४२.९)

इस मन्त्र से मिलता एक मन्त्र अथर्ववेद में भी है।[१] ऋग्वेद के अन्य कई मन्त्रों में कालबोधक शब्दों के द्वारा काल को प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में कहा गया है कि जो हुआ है और जो होने वाला है, वह पुरुष ही है। इस प्रकार पुरुष-रूप में भूत, वर्तमान और भविष्य को स्थापित किया गया है। यह मन्त्र यजुर्वेद और सामवेद में भी आया है।[२] वस्तुतः भूत, वर्तमान और भविष्य काल के ही रूप हैं।[३] पुरुषसूक्त में ही कालपुरुष को यज्ञ के विभिन्न साधनों से जोडते हुए कहा गया है कि वसन्त घी है, ग्रीष्म लकडी है तथा शरद् हवि है। यह विचार यजुर्वेद में भी ज्यों का त्यों आया है।[४]

वैदिक-ऋषियों ने ऋत नाम की एक शक्ति को स्वीकार किया था, जो सार्वभौम नियम के रूप में था। ऋतावा अर्थात् वरुण नियमों को बनाने वाले तथा स्वयम् उन नियमों को धारण करने वाले हैं। प्रजापालक वरुण यह देखते हैं कि सूर्य, चन्द्र, नदियाँ आदि अपने-अपने व्यापार सही रूप से कर रहे हैं या नहीं। वे कालज्ञ देवता हैं। वे बारह महीने और निश्चित काल के बाद उत्पन्न होने वाले तेरहवें महीने अर्थात् अधिमास या मलमास आदि समस्त काल-विभाजनों को जानते हैं।[५] यहाँ चान्द्रवर्ष और सौरवर्ष को अधिमास के द्वारा नियमित करने का स्पष्ट सङ्केत मिलता है। व्यवहार में सूर्य एवं चन्द्र ही काल-गणना का आधार हैं। सूर्य एवं चन्द्र के उदय एवम् अस्त होने के आधार पर ही हम काल का अलग-अलग विभाजन करते हैं। पूर्व से पश्चिम की ओर विचरण करने वाले तथा बार-बार जन्म लेने वाले ये दोनों ही दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु आदि परिवर्तन के कारण हैं।[६] ऋग्वेद के एक मन्त्र में सूर्य को वर्ष, मास, दिन और रात्रि बनाने वाला बताया गया है।[७] ऋग्वेद के अस्यवामीयसूक्त में सूर्य को एक चक्र वाले रथ के सवार के रूप में चित्रित किया गया है जिसके रथ को सात अश्व खींचते हैं। वस्तुतः ये सात अश्व सूर्य की सात रश्मियाँ हैं। इससे यह भी सङ्केत मिलता है कि सूर्य की रश्मियों में सात वर्णों का संयोजन है जिसका ज्ञान वैदिक-ऋषियों को था। निरन्तर गतिशील, कभी जीर्ण या नष्ट नहीं होने वाला यह चक्र ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त इन तीन मुख्य ऋतुओं का उत्पादक अथवा भूत, वर्तमान और भविष्य का निर्माता होने के कारण तीन नाभियों वाला कहा गया है। संसार का कोई भी प्राणी इसे

---

[१] कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने । (अथर्ववेद : २०.१७.५)

[२] पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । (ऋग्वेद १०.९०.२ ; यजुर्वेद ३१.२; सामवेदः पूर्वार्चिक : ६१९)

[३] (क) काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते । (अथर्ववेद : १९.५३.५)
(ख) कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा । (अथर्ववेद : १९.५४.३)

[४] वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः । (ऋग्वेद : १०.९०.६ ; यजुर्वेद : ३१.१४)

[५] वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥ (ऋग्वेद : १.२५.८)

[६] पूर्वापरं चरतो माययैतौशिशूक्रीळन्तौ परियातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्योभु वनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥ (ऋग्वेद : १०.८५.१८)

[७] वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ (ऋग्वेद : ७.६६.११)

अभिभूत नहीं कर सकता। समस्त लोक इसके गर्भ में ही समाहित हैं।[१] ऋग्वेद के अस्यवामीयसूक्त में ही संवत्सर-कालचक्र का वर्णन है। इस संवत्सररूपी चक्र में बारह अरे लगे हुए हैं जो वर्ष के बारह महीने की ओर सङ्केत करता है, ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त तीन मुख्य ऋतुएँ इसके तीन नाभिस्थान हैं तथा निरन्तर गतिशील रहने वाले ३६० दिन के पहिये के साथ लगी कीलें हैं, इस गूढ रहस्य को कोई विरला ही समझ पाता है।[२]

अथर्ववेद में स्पष्ट-रूप से संवत्सर में बारह महीने और एक महीने में तीस दिन होने का उल्लेख है।[३]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में अग्नि की स्तुति करते हुए संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर, वत्सर, उषा, अहोरात्र, अर्द्धमास, मास, ऋतु आदि काल के विभिन्न विभाजनों को प्रस्तुत किया गया है।[४] यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र में ऋतु, मास एवं संवत्सर को क्रमशः यज्ञ का विस्तारक, हवि का रक्षक एवं यज्ञ के धारक के रूप में चित्रित किया गया है।[५] सामवेद एवम् अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर इन छह ऋतुओं के नाम आये हैं।[६]

अथर्ववेद में काल से सम्बन्धित अनेक मन्त्र हैं। काल का जैसा विस्तृत वर्णन अथर्ववेद में हुआ है वैसा अन्य संहिताओं में नहीं हुआ है। इस संहिता में अलग-अलग अर्थों में काल शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में सवितृदेवता की स्तुति में रोहित- देव अथवा सूर्यदेव को ही काल कह दिया गया है।[७] अथर्ववेद के कालसूक्त में तो दिव्यरूप में काल की आराधना हुई है। ये सूक्त काल के विषय में वैदिक-ऋषियों के सूक्ष्म अन्वेषणात्मक-दृष्टि का पूर्ण विकसित-रूप कहे जा सकते हैं। इन सूक्तों में काल को

---

[१] सुप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ (ऋग्वेद १.१६४.२)

[२] द्वादशप्रधयश्चक्रम् एकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिता षष्टिर् न चलाचलासौः ॥ (ऋग्वेद : १.१६४.४८)

[३] यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः। (अथर्ववेद ४.३५.४)

[४] संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्तौ कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पनतामृतवस्ते कल्पन्ता संवत्सरस्ते कल्पताम्।।
(यजुर्वेद : २७.४५)

[५] ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः। संवत्सरस्तौ यज्ञं दधातु नः प्रजा च परि पातु नः॥
(यजुर्वेद : २६.१४)

[६] (क) वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिरः इन्नु रन्त्यो ॥ (सामवेद : पूर्वार्चिक : ६१६)
(ख) ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते ना दधात । (अथर्ववेद : ६.५५.२)

[७] रोहितः कालो अभवत्। (अथर्ववेद : १३.२.२९)

परमतत्त्व के रूप में उपस्थापित कर उसे समस्त सत्ताओं का मूल-कारण कहा गया है। कालसूक्त के अनेक मन्त्रों में काल को प्रथम देव, परमदेव, सर्वेश्वर, परमात्मरूप ब्रह्म आदि कहा गया है।[१] इस सूक्त के एक मन्त्र में काल को अश्वरूप में चित्रित किया गया है जो लगामों में नियन्त्रित होकर विश्वरूपी रथ को खींचता है। इसकी हजार आँखे हैं, यह जरारहित प्रभूत शक्ति वाला है, इसके ऊपर क्रान्तदर्शी ऋषि ही सवारी कर सकते हैं, सभी भुवन और सभी प्राणी उसके चक्र हैं।[२] सायण ने अश्व शब्द का अर्थ भूत, वर्तमान एवं भविष्यकालवर्ती वस्तुओं को व्याप्त करने वाला बताया है।[३] इस मन्त्र में काल को अश्व, सप्तरश्मि, सहस्राक्ष, अजर, भूरिरेतस् आदि कहकर काल की सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वद्रष्टा, नित्यता आदि प्रतिपादित की गयी है। काल सप्तचक्रों को वहन करता है, उसकी सात नाभियाँ हैं, वह अमृत है, उसने सभी भुवनों की रचना की ।[४] काल ने ही द्युलोक तथा सभी को आश्रय देने वाली को उत्पन्न किया ।[५] काल ने ही जगत् की सृष्टि की, काल से प्रेरित हो सूर्य तपता है, काल ही सम्पूर्ण विश्व का आश्रय है, काल के द्वारा ही सर्वेन्द्रिय अधिष्ठाता अपना व्यापार करता है।[६] काल में ही मन, प्राण एवं नाम समाहित हैं। इसके आगमन से सभी जीव प्रसन्न होते हैं।[७] काल ने प्रजा की उत्पति की तथा उसने ही प्रजापति को उत्पन्न किया । स्वयम्भू-कश्यप काल से ही उत्पन्न हुए और तप भी काल से निकले।[८] वह सबका पिता होकर भी सभी भुवनों का पुत्र बना । उससे बढ़कर कोई और तेज नहीं है।[९] है।[९] अथर्ववेद का अगला सूक्त भी काल को सबकी उत्पत्ति तथा निवेश का कारण बताता है। काल का का यह रूप भी परमात्मा का ही रूप है। काल से ही जल उत्पन्न हुए, काल से ही ब्रह्म, तप व दिशाएँ

---

[१] (क) स ईयते प्रथमो नु देवः। (अथर्ववेद : १९.५३.२)
(ख) कालः स ईयते परमो नु देवः। (अथर्ववेद : १९.५४.५)
(ग) कालो ह सर्वस्येश्वरः । (अथर्ववेद : १९.५३.८)
(घ) कालो ह ब्रह्म भूत्वा विभर्ति परमेष्ठिनम् । (अथर्ववेद : १९.५३.९)

[२] कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ (अथर्ववेद : १९.५३.१)

[३] अश्नुते व्याप्नोति भूतभविष्यद्वर्तमानकालवर्तीनि वस्तूनीति अश्वः।(अथर्ववेद;सायणभाष्यम् १९.५३.१)

[४] सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः । स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत्।
(अथर्ववेद - १९.५३.२)

[५] कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत । (अथर्ववेद : १९.५३.५)

[६] कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः । कालेहविश्वा भूतानि काले चक्षुर्विपश्यति ।
(अथर्ववेद : १९.५३.६)

[७] काले मनः काले प्राणः काले नामं समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः।।
(अथर्ववेद : १९.५३.७)

[८] कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत।

[९] पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत्परमस्ति तेजः। (अथर्ववेद : १९.५३.४)

उत्पन्न हुई। काल से ही सूर्य उदय एवम् अस्त होता है। काल से ही वायु बहती है। काल में ही द्यौः और पृथिवी समाहित हैं। काल से ऋचाएँ एवं यजुष् उत्पन्न हुए। यह लोक एवं परमलोक, पुण्य एवं पुण्यलोक तथा सभी लोकों को ब्रह्म द्वारा पूर्णतया जीतकर काल परमदेव की भाँति चलता रहता है। काल में ही गन्धर्व, अप्सराएँ, सभी लोक, अङ्गिरा तथा अथर्वा प्रतिष्ठित हैं।[१] इस प्रकार इस सूक्त में काल को कारणब्रह्म कहकर तथा जीवजगत् को उसका विकार, विवर्त माना गया है। यहाँ सभी परिवर्तनों में अनुस्यूत एकमात्र काल ही ब्रह्म है।

इस प्रकार साररूप में कहा जा सकता है कि वैदिक-संहिताओं में काल के व्यावहारिक एवं तात्त्विक, दोनों रूपों का विस्तार से वर्णन हुआ है। उसे उच्चतम तत्त्व मानकर सर्वोच्च सत्ता, ब्रह्म और ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है, जिससे सभी स्थूल एवं सूक्ष्म तत्त्वों का विकास हुआ है। वह विश्व-प्रक्रिया से अनन्यरूप से जुड़ा हुआ है। उसके बिना विश्व-व्यवस्था में जीवन-सञ्चार सम्भव नहीं है। उसके द्वारा ही समस्त लोक-व्यवहार सञ्चालित, सङ्क्रमित एवं नियन्त्रित हैं।

रवि प्रभात
शोधच्छात्र, संस्कृतिविभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

[१] अथर्ववेद : १९.५४.१-५